*वैश्विक पटल पर भारत का बढ़ता महत्व क्या यह लंबे समय तक बना रहेगा और क्या हम इसके लिए तैयार हैं?**

श्री बी. पी. कानूनगो

आज आपके बीच आकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है और आपसे बात करने का यह शुअवसर प्रदान करने के लिए मैं फेडाई एवं इस सम्मेलन के आयोजकों को धन्यवाद देना चाहता हूं। फेडाई पिछले छह दशकों से भी लंबे समय से विदेशी मुद्रा बाज़ार में आम जनता के साथ-साथ सीमा-पार अंतर-बैंक लेन-देन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। याद कीजिए कि शुरुआती दिनों में जब विदेशी बैंकों की केवल चुनिंदा शाखाओं द्वारा ही ऐसे विदेशी मुद्रा लेन-देन किए जाते थे, तब इस तरह के लेन-देन को निष्पक्ष बनाने के लिए फेडाई का गठन किया गया था। समय के साथ, वैधानिक ढांचे द्वारा विदेशी मुद्रा डीलरों को अधिकृत डीलर की एक अतिरिक्त भूमिका का निर्वहन करने का आदेश दिया गया – जो इतना व्यापक है कि वे विनियामक व्यवस्था के संचालन की जिम्मेदारी साझा करते हैं। प्राधिकृत (विदेशी मुद्रा) डीलरों की संस्था के रूप में फेडाई ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और अगर आज हम विदेशी मुद्रा बाजार में भागीदारी बढ़ा रहे हैं तो इसका कुछ श्रेय फेडाई को भी जाता है जिसने विदेशी मुद्रा संबंधी कारोबार के लिए प्रचुर मात्रा में और व्यापक रूप से आवश्यक कौशल विकास किया है। मुझे यकीन है कि यह रचनात्मक भूमिका निभाता रहेगा और बाजार सहभागियों को उन चुनौतियों से निपटने में मदद करेगा जो विदेशी मुद्रा बाजार में समय-समय पर आने वाले उछाल के कारण बाजार में अस्थिरता और अनिश्चितता लाती हैं।

वर्ष 2006 से आयोजित किए जा रहे ये वार्षिक सम्मेलन महत्वपूर्ण आयोजन रहे हैं, और मैं यह मानता हूं कि यह आयोजन सबसे महत्वपूर्ण है जिसका विदशी मुद्रा बाज़ार के भागीदार बेसब्री से इंतज़ार करते हैं। इससे बाज़ार के भागीदारों को नेटवर्किंग एवं विचारों के आदान-प्रदान का अवसर मिलता है। यह धूप और धूल भरे बाज़ार के माहौल से भी राहत प्रदान करता है। इस वर्ष के आयोजन की थीम को ध्यान में रखते हुए सम्मेलन हेतु इस स्थान के चयन की मैं प्रशंसा करता हूं। चीन एवं भारत सदियों से व्यापार एवं सभ्यता संबंधी जैसी बहुआयामी यात्रा के साथी रहे हैं। एंगस मैडिसन[1] मानते हैं कि 18वीं सदी की शुरुआत तक भारत और चीन दुनिया की दो सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था रहे हैं। क्रय शक्ति समता (पीपीपी) के आधार पर चीन विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है, जबकि भारत का स्थान तीसरा है।यदि आप निर्यात एवं आयात को जोड़ दें, तो चीन भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार (2017-18 का डेटा) है। सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में इन दोनों देशों के बीच बढ़ती साझेदारी में आने वाले समय में अभूतपूर्व उछाल देखा जा सकता है।

इस सम्मेलन के लिए चुना गया विषय है: अंतरराष्ट्रीय पटल पर भारत का बढ़ता महत्व: क्या यह लंबे समय तक बना रहेगा और क्या हम इसके लिए तैयार हैं? ये दिलचस्प और महत्वपूर्ण मुद्दे हैं, और जैसा कि हम देखेंगे, ये हमारे सामान्य व्यवहारिक कार्यक्षेत्र के लिए काफी प्रासंगिक हैं। अब, अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में महत्व के कई आयाम हैं: कुछ का अगर हम नाम लें तो वे हैं - सांस्कृतिक, सैन्य, नैतिक, रणनीतिक परंतु इन सबसे बढ़कर जो आयाम है वह आर्थिक है। यदि आप मानव सभ्यता के इतिहास को देखें, तो आप पाएंगे कि यह आर्थिक समृद्धि ही है जो किसी भी देश की महत्ता तय करती आई है। यदि हम 15वीं/16वीं शताब्दी के इटली के शहरी राज्यों को देखें तो हम पाएंगे कि शेक्सपियर के कई नाटकों की पृष्ठभूमि वेरोना से वेनिस तक थी - और यह सोचकर अचरज होता है कि क्या मेडिसी और अन्य के समर्थन और धन के बिना ऐसा पुनर्जागरण संभव हो पाता, अथवा 18वीं/19वीं सदी का ब्रिटेन जो दो सदियों के लिए एक महत्वपूर्ण वैश्विक शक्ति बन गया, तथा अंग्रेजी संपर्क भाषा बन गई - यह आर्थिक संवृद्धि ही है जिसने इन देशों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण बनाया। आज के समय में चीन की श्रेष्ठता बहुत हद तक उसकी अभूतपूर्व आर्थिक सफलता के कारण ही है।

हमें यह भी गौरतलब है कि आर्थिक समृद्धि लगभग हमेशा ही अभिन्न रूप से अंतरराष्ट्रीय व्यापार और वाणिज्य के साथ

* श्री बी.पी. कानूनगो, उप गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक। बीजिंग में 19 अप्रैल 2019 को आयोजित FEDAI के वार्षिक सम्मेलन में दिया गया भाषण।

[1] मेडसिन एंगस " दि वर्ल्ड इकोनॉमी, हिस्टोरिकल स्टैटिक्स, 2003

जुड़ी रही है (पूंजीगत आंदोलन हाल की घटनाएं हैं)। औद्योगिक क्रांति से उत्पादकता में हुई वृद्धि ने मुक्त व्यापार और वाणिज्य की आवश्यकता को रेखांकित किया। बेशक, यह उस अर्थ में नहीं था जैसा कि अब हम समझ रहे हैं। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक, यूरोप में वाणिज्यवाद प्रमुख नीति निर्धारक की भूमिका में था। इसमें कोई संदेह नहीं कि इसने स्वर्ण को छोड़कर सभी वस्तुओं के निर्यात का समर्थन किया, लेकिन साथ ही आयात शुल्क के माध्यम से आयात को हतोत्साहित करने का भी प्रयास किया। अंततः, 1846 में कॉर्न लॉ (ब्रिटिश) को निरस्त करने के साथ ही मुक्त व्यापार का मुद्दा स्पष्ट रूप से परिभाषित हो गया। मुक्त व्यापार कल्याण को बढ़ावा देता है; इस धारणा को आगे हुए शोधों ने सैद्धांतिक धरातल पर मजबूती ही प्रदान की है। इस तथ्य के बावजूद कि पिछले दो शताब्दियों में वैश्विक आर्थिक विकास और वैश्विक व्यापार में वृद्धि साथ-साथ चली है, आयात प्रतिस्थापन, चुनिंदा संरक्षण, अनुदान के पक्ष में जबकि कम प्रतिबंध वाले व्यापार से संबंधित वैश्विक उद्देश्य बना रहेगा, तथापि अन्य समष्टि-आर्थिक कारकों, जैसे कि राजकोषीय नीति, विनिमय दर नीति, रोजगार नीति, आदि को ध्यान में रखते हुए स्थानीय परिवर्तनों पर विचार करना होगा।

वस्तुओं और सेवाओं में व्यापार के विपरीत, पूंजी प्रवाह का मामला स्पष्ट नहीं रहा है। यद्यपि यह सही है कि ब्रेटन वुड्स प्रणाली में पूंजी प्रवाह पर प्रतिबंध लगाए गए थे, तथापि, सत्तर के दशक की शुरुआत में ब्रेटन वुड्स प्रणाली के असफल होने के बाद मुक्त पूंजी प्रवाह के पक्ष में मजबूत दावे सामने आए जिसे आईएमएफ का समर्थन भी मिला। 1990 के उत्तरार्ध के सुदूर पूर्वी संकट के मद्देनजर, इसकी वांछनीयता के बारे में बहस फिर छिड़ गई। वैश्विक वित्तीय संकट के बाद इस बहस ने फिर से जन्म ले लिया और उसके बाद से एक आम सहमति बनी हुई है - और मैं यहां ब्रेटन वुड्स के मुख्य निर्माताओं में से एक, हैरी डेक्सटर व्हाइट के शब्दों को दोहराना चाहूंगा, - "उपयोगी पूंजी को उन क्षेत्रों में प्रवाहित करने को प्रोत्साहित करना जहां इसे सबसे अधिक लाभप्रद रूप से उपयोग में लाया जा सके, इस पर जोर देने की कोई आवश्यकता नहीं है, परंतु ऐसा भी समय आता है जब पूंजी प्रवाह को सही मोड़ न दे पाने से गंभीर आर्थिक व्यवधान वाले परिणाम सामने आए हैं'। कीन्स इससे सहमत थे।

मैंने व्यापार और पूंजी प्रवाह से संबंधित प्रस्तावों पर जो चर्चा की है उसके पीछे मेरा मकसद यह स्पष्ट करना है कि दोनों में से किसी से संबंधित कोई भी सार्वभौमिक स्वीकार्य नीति नहीं है। सिद्धांत और अनुभववाद दोनों ही देश की विशिष्ट आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त नीति के विशिष्ट सेटों की संभाव्यता को शामिल करते हैं और इसी पृष्ठभूमि में हम अतीत और वर्तमान के सीमा-पार लेन-देन के संबंध में अपनी नीतियों पर विचार करेंगे।

सीमापार लेन-देन व्यवस्था के कई पहलू हैं: परंतु हमारी इस चर्चा का प्रयोजन विनिमय नियंत्रण बल्कि विदेशी विनिमय प्रबंधन से संबंधित है। विदेशी मुद्रा प्रबंधन नीति अंततः दो कारकों पर निर्भर है: विदेशी मुद्रा की उपलब्ध मात्रा और विनिमय दर। इसने भारत में विनिमय नियंत्रण व्यवस्था के उद्भव को दिशा प्रदान की है और देखा जाए तो वास्तव में दुनिया भर में दिशा दी है।

वर्ष 1947 में फेरा, 1947 द्वारा सांविधिक व्यवस्था में प्रशासनिक फिएट के माध्यम से युद्धकालीन समय विनिमय नियंत्रण को परिवर्तित किया गया था। 1960 में विदेशी मुद्रा की अत्यधिक कमी और अन्य विभिन्न कारकों जैसे कि खाद्यान्न की कमी, युद्ध होने आदि ने और अधिक कठोर व्यवस्था फेरा, 1973 की ओर ले गई। विदेशी मुद्रा को स्वत: महत्वपूर्ण माना जाता था और नीति व्यवस्था में विभिन्न मांगों के लिए विदेशी मुद्रा का अनिच्छित आबंटन के नियम शामिल थे। आयात नियंत्रण और आयात प्रतिस्थापन के प्रोत्साहन ने मानार्थ नीति साधन प्रदान किए हैं। सत्तर के दशक के मध्य में (फेरा, 1973 के लागू होने के तुरंत बाद लेकिन आवश्यक नहीं कि इसी कारण से) बाहरी क्षेत्र से संबंधित स्थिति के प्रारंभ में भारतीय प्रसार से बढ़ते विप्रेषण और हरित क्रांति के प्रभाव से सुधार होने लगा। इस प्रकार 1980 के दशक में, सीमापार लेन-देन में प्रगतिशील और वृद्धिशील उदारीकरण हुआ लेकिन ऐसा एक ही दृष्टांत में हुआ। यहां एक के बाद दो बातें क्रमश: इस प्रकार हैं।पहली, विनिमय नियंत्रण व्यवस्था में उदारीकरण से अन्य आर्थिक नीतियों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन शामिल नहीं था। दूसरा, हालांकि ब्रेटन-वुड्स शासन 1970 के दशक की शुरुआत में

टूट गया और कई मुद्राएं चलायमान हुईं, रुपया एक नियंत्रित विनिमय दर प्रणाली में रहा, पहले पाउंड स्टर्लिंग और फिर विविध मुद्रा समूह में। इस प्रकार, नब्बे के दशक की शुरुआत में एक बार फिर विदेशी मुद्रा संकट सामने आया। इस समय संकट के उपरांत नीतिगत प्रतिक्रिया एक व्यापक सुधार थी। जहां तक सीमापार लेनदेन को विनियमित करने का संबंध है, मैं यहां तीन ऐतिहासिक घटना का उल्लेख करना चाहूंगा: (ए) 1993 में बाजार निर्धारित विनिमय दर प्रणाली को अपनाना, (ख) आइएमएफ चार्टर के अनुच्छेद 8 के अनुरूप प्रतिबद्धता - चालू खाता परिवर्तनीयता - 1994 में और (ग) 1999 में फेमा का अधिनियमन - एक दबाववाली व्यवस्था को हटाकर। यह एक नया प्रतिमान था।

हम इस प्रतिमान में अब तक लगभग ढाई दशक रहे हैं। समय-समय पर नीति व्यवस्था में तालमेल रहा है, परंतु मूल सिद्धांत समान हैं और जो भविष्य में नीतिगत ढांचे के विकास का मार्गदर्शन करते रहेंगे। मैं आपका ध्यान फेमा, 1999 की प्रस्तावना की ओर आकर्षित करता हूं, जो बहुत ही सरलता से सीमापार लेन-देन को कैसे नियंत्रित करने के दर्शन को सारांशित करता है। यह इस प्रकार है: ***"एक अधिनियम जो भारत में विदेशी मुद्रा बाजार के क्रमिक विकास और रखरखाव को बढ़ावा देने और बाहरी व्यापार और भुगतान को सुविधाजनक बनाने के उद्देश्य से विदेशी मुद्रा से संबंधित कानून को समेकित और संशोधित करता है।"***

जहां तक चालू खाता का सवाल है, इस क़ानून में यह अधिदेश है कि रिज़र्व बैंक के परामर्श से केंद्र सरकार द्वारा लगाए गए प्रतिबंध के अतिरिक्त कोई अन्य प्रतिबंध नहीं होगा। नियम-पुस्तिका में जो प्रतिबंध दिए गए हैं, वे अधिकतर कुछ (सामाजिक रूप से अवांछनीय) गैर-प्राथमिकता प्राप्त गतिविधियों जैसे जुआ,ऐसे लेन-देन जहां पूंजीगत लेन-देन को चालू खाता लेन-देन के रूप में प्रयोग किया जाता है और कुछ का रणनीतिक निहितार्थ के लिए। कुछ विषमता भी है, अगर नियम नहीं हैं, चालू खाते के लेन-देन के मध्य जिसमें एक बाहरी प्रेषण और जिसमें एक आवक शामिल है। चालू खाता लेन-देन के लिए विनियामक ढांचा अत्यधिक स्थिर रहा है; मैं कह सकता हूं कि आउटसोर्सिंग हब के रूप में भारत की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए सेवाओं में लेन-देन लगातार बढ़ रहा है। हालांकि भुगतान संतुलन को संकलित करने हेतु सकल आंकड़ों के संग्रह के लिए एक व्यापक प्रणाली मौजूद है, संभवत: हमें जहां आवश्यकता है वहां अपनी समझ में सुधार करने और नीतिगत कार्रवाई को बेहतर बनाने के लिए वणिक व्यापार की तरह ही लेन-देन स्तर के आंकड़े एकत्रित करने के लिए एक प्रणाली विकसित करने की आवश्यकता है।

अब मैं पूंजी खाता लेनदेन की ओर रुख करता हूं। यह क़ानून रिज़र्व बैंक (और 2015 के फेमा में संशोधन, 1999 को अधिसूचित किया गया था, केंद्र सरकार कुछ वर्गों के लेन-देन में) विनियमित करेगा कि किस सीमा तक और किन शर्तों के अधीन किसी पूंजी खाते के लेन-देन की अनुमति है। आंशिक रूप से इन वैधानिक प्रावधानों के कारण परंतु अधिकांशत: पिछले दो दशकों के दौरान विकसित समष्टि आर्थिक स्थितियों, पूंजी खाते से संबंधित नीतिगत कार्यवाहियों के कारण हैं।

जैसा कि मैंने पहले कहा, 1970 के आरंभ से, और 1980 के पूरे दशक और 1990 के दशक में भी मुक्त बाजार के समर्थकों ने सम्पूर्ण पूंजी संपरिवर्तनीयता की पुरजोर वकालत की थी। यह 1994 के आईएमएफ़ की मैड्रिड घोषणा में फलीभूत हुआ, जिसमें सदस्य देशों को पूंजी प्रवाहों में आने वाली बाधाओं को दूर करने हेतु प्रोत्साहित किया गया। तथापि, बाद की वैश्विक आर्थिक प्रगति ने इस अवस्थिति (स्टांस) में संशोधन कर दिया है और अब यह स्वीकार कर लिया गया है कि पूंजीगत नियंत्रणों को वस्तुतः व्यष्टिआर्थिक और वित्तीय स्थिरता हेतु एक साधन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। अब यह लक्ष्य (गोलपोस्ट) संपरिवर्तनीयता से पूंजीगत लेखा उदारीकरण यानी एक घटना से एक प्रक्रिया में बदल गया है। इससे उदारीकरण की गति और स्वरूप संबंधी मुद्दे खड़े होते हैं, जिसके संवाहक वैश्विक सिद्धांतों पर आधारित होने की बजाय, चयनवादी (एक्लेक्टिक) और देश-केन्द्रित हैं। व्यापक तौर पर, तीन निर्धारक कारक महत्वपूर्ण हैं: (क) पूंजीगत खाता खोलने हेतु पूर्वशर्त (ख) पूंजीगत लेखा प्रतिबंधों की लागत और प्रभाविता और (ग) लगातार उदार होते पूंजीगत लेखा के मौद्रिक नीति निहितार्थ।

तब भी, विदेशी मुद्रा बाजार की स्थिरता और व्यवस्थित स्थितियाँ पूंजी प्रवाहों संबंधी नीतियों की निकटस्थ निर्धारक बनी रहेंगी। हमारे मामले में, जहाँ पूंजी प्रवाह आयात-निर्यात अंतर और बचत-निवेश अंतर को पाटने के दुहरे उद्देश्य को पूरा करते हैं, वहीं उपर्युक्त विचारण विनियमन के दृष्टिकोण को निर्धारित करेंगे। पूंजीगत लेखा उदारीकरण के लिए सामान्यतः तीन पूर्वशर्तों पर चर्चा की जाती है: मूल्य स्थिरता, राजकोषीय स्थिरता और वित्तीय संस्थाओं एवं बाज़ारों की स्थिरता। जैसा कि आज हम चर्चा कर रहे हैं, उल्लिखित मानदंडों के संबंध में उपलब्धियां अलग-अलग हैं। आम सरकार के स्तर पर राजकोषीय घाटे में सुदृढ़ीकरण की आवश्यकता है। यह अपेक्षित है कि हम और अधिक उदार पूंजीगत खाते की ओर बड़े कदम उठाएँ, इससे पहले संवृद्धि निम्न मुद्रास्फीति और राजकोषीय विवेक के साथ अच्छी तरह तालमेल बिठा ले। इसके अलावा, दूरस्थ क्षितिज में ही सही, वैश्विक प्रतिकूलताओं (ग्लोबल हेडविंड्स) के संकेत भी दिख रहे हैं।

हालांकि पूंजीगत लेखा उदारीकरण की बारीकियाँ विस्तृत विषय हैं, पूंजी प्रवाहों के पदानुक्रम संबंधी कुछ व्यापक नीतिगत परमाधिकारों का उल्लेख किया जा सकता है। पहला, वित्तीय क्षेत्र में प्रवाहों की तुलना में, खास तौर पर रियल सैक्टर के लिए पूंजी प्रवाहों को सदैव वरीयता मिलेगी। दूसरा, ऋण अंतःप्रवाहों की तुलना में इक्विटी संबंधी पूंजीगत अंतःप्रवाहों को तरजीह मिलेगी। इक्विटी प्रवाहों में भी, पोर्टफोलियो प्रवाहों के मुक़ाबले प्रत्यक्ष निवेश प्रवाहों को तरजीह मिलेगी। और जहाँ तक ऋण प्रवाहों का मामला है तो दीर्घावधि ऋण और रुपया-नामित ऋण – चाहे द्विपक्षीय करारबद्ध हों या विपणन-योग्य प्रतिभूतियों के मार्फत- को तरजीह मिलना जारी रहेगा। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, बाह्य वाणिज्यिक उधारियों, व्यापार घाटे आदि के संबंध में हाल में हुए नीतिगत बदलावों से आप अवगत हैं। तथापि, ये बदलाव अपनी अवस्थिति (स्टांस) में किसी महत्वपूर्ण बदलाव करने की बजाय, अधिकांशतः युक्तिकरण और सुदृढ़ीकरण ही करते हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था की निवेश आवश्यकताएँ बहुत अधिक हैं और बहुत अधिक बनी रहेंगी। अपेक्षित संवृद्धि को बल देने वाले आइकोर-चालित निवेश के अलावा, भौतिक और सामाजिक अवसंरचना क्षेत्रों के लिए भारी निवेश की भी आवश्यकता है। बाद वाले इन निवेशों की लंबी और अनिश्चित निष्पादन अवधि, लंबी निवेश-वापसी अवधि आदि के रूप में अपनी चुनौतियाँ हैं। दुनिया अभी पेंशन फ़ंड के रूप में दीर्घावधि बचतों और बीमा कंपनियों की मूल निधियों से लबालब है। इसलिए हमारी नीति व्यवस्था को इतना चपल-चुस्त और समायोजी होना पड़ेगा कि इन्हें भारत में उत्पादक उपक्रमों की ओर मोड़ा जा सके। हम इस दिशा में काम कर रहे हैं।

अवसंरचना क्षेत्रों पर बात करते हुए, हम निवेशकों के एक नये वर्ग के उदय को नोटिस किए बिना नहीं रह सकते: जोखिम पूंजी और निजी इक्विटी। उपख्यान्यात्मक रिपोर्टें ऐसा बताती प्रतीत होती हैं कि पिछले कुछ वर्षों में, ऐसी निधियों द्वारा निवेश एफ़डीआई अंतःप्रवाहों का लगभग 30-40 प्रतिशत हिस्सा निर्मित कर रहा है। जहाँ एक ओर पेंशन फ़ंड, बीमा कंपनियों, राष्ट्रिक फ़ंड, ट्रस्ट, एंडोमेंट आदि जैसे दीर्घावधि निवेशकों और दूसरी ओर संभावनाशील संवृद्धि उद्योगों के बीच मध्यस्थ के रूप में वीसी और पीई फंड की भूमिका जिस तरह महत्वपूर्ण है, इन निवेशों की अलग-अलग संरचनात्मक और व्यवहारगत विशेषताएँ हैं। वर्तमान व्यवस्था सामान्य एफ़डीआई में आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण लेकिन जोखिमपूर्ण माने जाने वाले कुछ चुनिंदे क्षेत्रों में वीसी निवेशकों को व्यापक स्वतंत्रता देती है। शायद यहाँ निजी इक्विटी निवेश को इसकी संपूर्णता में विचार करने और यह देखने की आवश्यकता है कि क्या नीतिगत व्यवस्था में- व्यापक और नवोन्मेषी कर्ज-निधियन, मिश्रित लिखतों आदि, खासकर जहाँ वे अवसंरचना, अपारंपरिक ऊर्जा, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं अन्य सामाजिक प्रभाव वाले क्षेत्रों जैसे प्राथमिकता क्षेत्रों से संबन्धित हैं, सहित- फेरबदल वांछित है। यह हमारा ध्यान खींच रहा है।

स्टार्ट-अप से जुड़े मुद्दे बेहद महत्वपूर्ण हैं। कारोबार का विकास जिस प्रकार हुआ है, कुछ समय पूर्व इस प्रकार के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती थी। सबसे बड़ी परिवहन कंपनी जिसके पास खुद की कार नहीं है, सबसे बड़ी खुदरा कंपनी जिसके पास खुद की कोई दुकान नहीं है इत्यादि; मिसाल के तौर पर इसके उदाहरण है। प्रौद्योगिकी और इंटरनेट ने सेवा उद्योग में क्रांति लाने का काम जारी रखा है। अधिकांश स्टार्ट-अप ने रोजगार सृजन में बहुत अधिक योगदान दिया है (क्या हमें अर्थव्यवस्था में रोजगार को महत्व देते हुए वृहद रोजगार संभावना के क्रियाकलापों के लिए बेहतर एफ़डीआई व्यवस्था की शुरुआत करनी चाहिए?)। अपने बढ़ते चरण में स्टार्ट-अप को पूंजी की बहुत आवश्यकता होती है और इस

पूंजी का एक बड़ा हिस्सा विदेशी निवेश के माध्यम से ज्यादातर उद्यम पूंजी या निजी इक्विटी फंड के रूप में आता है। हमने पूर्व में स्टार्ट-अप्स द्वारा फंड जुटाने की सुविधा के लिए कई कदम उठाए हैं, लेकिन हम इसके अनुपालनगत बोझ को कम करने के साथ-साथ इसकी उभरती जरूरतों के प्रति ज़िंदादिली बनाए रखेंगे।

जहां तक पूंजी के बहिर्गमन का संबंध है, हमारा दृष्टिकोण क्या होना चाहिए? अब तक यह लगभग पूरी तरह से प्रत्यक्ष निवेश के प्रति रहा है। इतना ही नहीं, इक्विटी और ऋण बहिर्गमन के लिए कोई अलग नीति नहीं है। फ़ेरा काल के दौरान जो नीति दृष्टिकोण आगे चलता आ रहा था उसमें कई प्रकार की नकारात्मकता थी। एक पूंजी अभाव वाला देश पूंजी निर्यात क्यों करता है? क्या विदेशी निवेश की प्रक्रिया पर उससे प्राप्त होने वाले लाभांश के आधार पर विचार नहीं किया जाना चाहिए? शायद इस पर फिर से विचार करने का समय आ गया है। भारतीय निवासियों द्वारा विदेशी संपत्ति का निर्माण की प्रविष्टि अंतरराष्ट्रीय निवेश की स्थिति में एक क्रेडिट प्रविष्टि के रूप में की जाती है। इसलिए लाभांश अर्जन की जगह मूल्यवर्धन पर विचार करने की जरूरत है। दूसरा, रणनीतिक और आर्थिक संपत्ति का अधिग्रहण जैसे - कोयला क्षेत्र, तेल क्षेत्र, आदि एक दीर्घकालिक प्राथमिकता है। तीसरा, विदेशी निवेश को शायद निर्यात के रूप में देखा जा सकता है, जिसे पूंजी का निर्यात न मानते हुए उद्यमिता का निर्यात मानना चाहिए। अंतिम बात यह है की विदेशी निवेश स्टार्ट-अप से जुड़ा एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। कई स्टार्ट-अप्स व्यक्तिगत उद्यमियों सहित विदेशी होल्डिंग कंपनी के माध्यम से भारत में निवेश करते हैं; ताकि एक विदेशी क्षेत्राधिकार में पूंजी जुटाने में आसानी हो। जबकि आर्थिक गतिविधि भारत में घटित होती है जो रोजगार, राजस्व और आर्थिक मूल्य का सृजन करती है। हम, भारत सरकार के साथ, इस संबंध में विनियामकीय शासन में मौजूद किसी भी गलतफ़हमी पर पुनः विचार करेंगे और आवश्यक सुधारात्मक कार्रवाई करेंगे।

अब मैं विदेशी मुद्रा बाजार पर आता हूँ। मुझे पता है कि विदेशी मुद्रा बाजार में काम कर रहें ट्रेजरी प्रोफेशनल इस क्षेत्र में बड़ा स्थान रखते हैं और यह एक ऐसा विषय है जिससे आप निकटता से जुड़े हुए हैं। जैसा कि मैंने पहले ही बतलाया था कि एक सुव्यवस्थित विदेशी मुद्रा बाजार का होना एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है और एक्स्चेंज प्रबन्धन व्यवस्था को आगे बढ़ाने की यह एक पूर्वशर्त है। हम 'आरबीआई मध्यवर्ती दर' के दिनों से काफी आगे आ चुके हैं। आज, भारतीय विदेशी बाजार दैनिक कारोबार के मामले और उपलब्ध उत्पादों की रेंज में बहुत अच्छी तरह विकसित है। अभी भी, यह एक विनियमित बाजार बना हुआ है। आइए अब हम यह देखें की इस बाजार की अभिप्रेरणा और विनियामकीय शासन का भविष्य क्या है।

विदेशी मुद्रा बाजार विनिमय दर को निर्धारित करता है, जो एक महत्वपूर्ण समष्टि-चर है, जिसका भुगतान संतुलन, मौद्रिक नीति, पूंजी प्रवाह, और कई अन्य व्युत्पन्न मुद्दों पर प्रभाव पड़ता है। अब, यह सर्व विदित है कि दीर्घावधि में विनिमय दर मुद्रास्फीति, ब्याज दरों, भुगतान-संतुलन आदि जैसे आर्थिक मूल सिद्धांतों पर निर्भर करती है, लेकिन अल्पावधि में विनिमय दर मूल सिद्धांतों द्वारा निर्धारित मूल्य से काफी अलग हो सकती हैं। यद्यपि विनिमय दर कई पद्धतियों से तय की जा सकती है जैसे कि विभिन्न मुद्राओं तथा विभिन्न भारांक पद्धति के संयोजन से आरईईआर (नाममात्र प्रभावी विनिमय दर) और एनईईआर (नाममात्र प्रभावी विनिमय दर) मेरी चर्चा हेडलाइन भारतीय रुपया - अमरीकी डॉलर दर के इर्दगिर्द केंद्रित रहेगी, जो मतों और निर्णयों से संचालित होती है। विनियम दर में उतार-चढ़ाव अनेक प्रकार के घटनाक्रमों की भावनाओं और धारणाओं के कारण होते हैं, ये घटनाक्रम कुल घरेलू और कुछ वैश्विक होते हैं। जैसाकि आप जैसे डीलर लोग कहते हैं, "अफवाह पर खरीदें, और ख़बर पक्की होने पर बेचें"। हमारे पास इस तरह के कई प्रकरण आए हैं। मार्च 2018 में पिछले एक साल या उसके दौरान रुपया ने 64 के स्तर को देखा, जो अक्तूबर 2018 में घटकर लगभग 75 के स्तर तक गया और फिर मार्च 2019 तक यह 68+ के स्तर तक मजबूत हुआ और तब से लगभग इसी के आसपास कारोबार कर रहा है। इस एक वर्ष के दौरान, भारतीय अर्थव्यवस्था के मूल सिद्धांतों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, और न ही वैश्विक परिस्थितियों में भी कोई नाटकीय परिवर्तन हुआ है। इसका कारण ज्यादातर पूंजी प्रवाह में तेजी या कमी रही है, जो धारणाओं और जोखिम से बचने या इसे पचा पाने की क्षमता से प्रेरित है। हालांकि, विनिमय दर में इन बदलावों को समझ लेने से भी नीति निर्माता को कोई हल नहीं मिलता है: पर एक प्रतिक्रिया जरूरी हो जाती है, ताकि बाजार में घबराहट न

हो और इसके मद्देनजर बाजार में बहुत बड़ी अव्यवस्था न हो। प्रतिरक्षा करने के रूप में पहला कदम बाजार में हस्तक्षेप करना है। लेकिन तभी असंभाव्यता का त्रिक भी अपना खेल दिखाता है: बाजार में हस्तक्षेप करना रुपये की चलनिधि को प्रभावित करता है और यह मौद्रिक नीति के रुख के विपरीत हो सकता है। निष्प्रभावीकरण की कदाचित अपनी लागत होती है। और कभी-कभी, विशेष रूप से जब रुपया का मूल्यह्रास होता है, तब हस्तक्षेप एक सीमा तक ही हो पाता है, और इस प्रकार का हस्तक्षेप कार्यनीतिक रूप से अप्रभावी होता है। प्रतिरक्षा करने के रूप में दूसरा कदम पूंजी नियंत्रण व्यवस्था को संशोधित करने का सहारा लेना है: रुपये में तेजी या मूल्यह्रास के आधार पर प्रतिबंधों को कठोर या आसान बनाना। हालांकि यह एक अंतिम उपाय होना चाहिए: क्योंकि विदेशी मुद्रा बाजार की स्थिति जहां तेजी से बदल सकती है, वहीं नियंत्रण व्यवस्था लंबी अवधि के लिए होना चाहिए भले ही ये आर्थिक एजेंटों द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हों।

दूसरा विषय, जिसपर मैं बात करना चाहता हूँ वह विदेशी मुद्रा बाजार के डेरिवेटिव से जुड़ा हुआ है। डेरिवेटिव तीव्र प्रतिक्रियात्मक होता है - 'वित्त की सबसे महत्वपूर्ण घटना' (ग्रीनस्पैन) से लेकर 'सामूहिक विनाश के हथियार' (बुफे) या 'हत्या करने के लिए अनुज्ञप्ति' (सोरोस) तक की प्रतिक्रिया होती है। डेरिवेटिव का प्राथमिक उद्देश्य भविष्य की अनिश्चितताओं के खिलाफ बचाव करना है। इस प्रकार, वे बेहतर अंतर-अस्थायी निर्णय लेने के लिए एजेंटों को सक्षम करने में आर्थिक रूप से बेहद उपयोगी कार्य करते हैं। लेकिन दूसरी ओर, उन्हें अटकलों के उपकरणों के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है जो जोखिम आबंटन को अस्पष्ट कर सकता है। गार्बर के अनुसार, 'डेरिवेटिव के उत्थान से जुड़ी समस्याओं का स्रोत अंशतः वहीं हैं जो इसके लाभ के हैं: अलग करने की बढ़ी हुई क्षमता और बाजार जोखिम का मतलब है कि कुछ प्रतिपक्षकार अतीत की तुलना में अधिक आसानी से जोखिम भरी पोजीशन ले सकते हैं। डेरिवेटिव की समस्या का स्रोत यह है कि वे अत्यंत जटिल और अपारदर्शी हो सकते हैं। हमारे बाजारों में, हमारे पास रैखिक (फॉरवर्ड और फ्यूचर्स) दोनों के साथ-साथ गैर-रैखिक (ऑप्शन, एक्सचेंज तथा ओटीसी दोनों पर कारोबार योग्य) विकल्प हैं। बाद वाले ज्यादातर सादे स्वरूप के होते हैं। कुछ समय के लिए, जटिल डेरिवेटिव्स को रुपया में शामिल नहीं होने दिया गया, लेकिन इससे वे जोखिम जिन्हें राजश्री शुगर केस में समझ नहीं पाए उनका अनुमान लगा सके। समस्या का दूसरा पहलू अरक्षित एक्सपोज़र है। हेजिंग में लागत होती है। यह वह लागत है जिसे एक एजेंट अनिश्चितता को निश्चितता में बदलने के लिए चुकाता है। इस प्रकार, यहाँ बचाव रहित रहने तथा घटनाओं को ईश्वर पर छोड़ने की प्रवृति हो सकती है। क्या बाज़ार की स्थितियां प्रतिकूल होनी चाहिए, नुकसान में कटौती करना एक सनक सी बन गई है जो बाज़ार की स्थिति को और भी बिगाड़ देती है। हमारा दृष्टिकोण एक ऐसा एजेंट रखना रहा है और रहेगा जिसे रुपए का एक्सपोज़र है चाहे वो निवासी हो या अनिवासी ताकि डेरिवेटिव उत्पादों की पहुँच के साथ उन्हें अपने विदेशी विनिमय जोखिमों को रोकने में सहायता हो सके लेकिन साथ ही उत्पादों की पहुँच का धीरे-धीरे विस्तार करना होगा।

विदेशी मुद्रा बाज़ार की चर्चा तब तक पूरी नहीं होगी जब तक रुपए के अंतरराष्ट्रीयकरण के मुद्दे की चर्चा न कर ली जाए। एक मुद्रा अंतरराष्ट्रीय अथवा आरक्षित मुद्रा तभी हो सकती है जब इसे अनिवासी द्वारा व्यापक रूप से रखा जाता है और अंतरराष्ट्रीय लेन-देन के निपटान में इसका उपयोग किया जाता है। मुद्रा के अंतरराष्ट्रीयकरण के कुछ फ़ायदे हैं तो कुछ नुकसान भी हैं। इसका प्रमुख फायदा अपनी मुद्रा में उधार लेने की असमर्थता की 'प्रमुख समस्या' से छुटकारा पाना है जो कि मुद्रा संकट के आधार में हैं। नुकसान उस देश की बाध्यता से होता है जिसकी मुद्रा इसकी वैश्विक मांग को पूरा करने के लिए वैश्विक आरक्षित मुद्रा के रूप में कार्य करती है जो कि अपनी घरेलू नीतियों के साथ टकराव की स्थिति में आ सकती है। पिछले कुछ वर्षों में, वैश्विक निवेशकों ने रुपया आधारित आस्तियों -दोनों इक्विटी तथा डेट- के सक्रिय तटवर्ती बाज़ारों में अपनी दिलचस्पी दिखाई है। तथाकथित मसाला बॉन्डों में रुपया मूल्यवर्गीय बॉन्ड ने भी तटवर्तीय बाज़ारों में निवेशकों की रुचि को देखा है। जब रुपया आस्ति वैश्विक निवेशकों द्वारा व्यापक रूप से रखा जाता है, तो मुद्रा, ब्याज़ दर तथा क्रेडिट जोखिमों के बचाव हेतु रुपया डेरिवेटिव्स की आवश्यकता होगी। इसलिए यह स्वाभाविक है कि तटवर्तीय वित्तीय केन्द्रों में इस प्रकार के बाज़ारों की आवश्यकता होगी। इन बाज़ारों में चुनौती यह है कि जहां एक ओर तटवर्तीय डेरिवेटिव्स बाज़ार को कड़ाई से

विनियमित किया जाता है, वहीं अपतटीय बाज़ार नियामकीय पहुँच से परे हैं, जिससे अशांत प्रकरणों के दौरान मध्यस्थता के माध्यम से घरेलू बाज़ार प्रभावित हो सकते हैं। नियामकीय ढांचा तटवर्तीय डेरिवेटिव बाज़ारों को रुपए एक्सपोज़र के साथ सभी अनिवासियों के लिए सुलभ बनाने के प्रयास जारी रखेगा।

मुझे अब निष्कर्ष पर आना चाहिए। भारत विश्व के तेजी से बढ़ते देशों में से एक है तथा पीपीपी के आधार पर आज विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। यह वैश्विक निवेशकों के पसंदीदा स्थानों में से एक है। भारतीय अर्थव्यवस्था ने प्रतिकूल वैश्विक घटनाओं के प्रति यद्यपि पूरी तरह नहीं किंतु समुत्थानशीलता दिखायी है। निरंतर आर्थिक विकास तथा बृहत आर्थिक स्थिरता, अनुकूल जनसांख्यिकी और एक बड़े बाज़ार के साथ भारत वैश्विक आर्थिक क्षेत्र में एक प्रमुख भागीदार है। इसकी वैश्विक भूमिका की निरंतरता विकास की गति तथा स्थिरता बनाए रखने पर निर्भर करेगी। जबकि इसके लिए बहुत से क्षेत्रों में उभरती चुनौतियों के लिए निरंतर नीतिगत प्रतिक्रिया की आवश्यकता होगी, साथ ही वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण भी विकास की गति को बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण कारक होगा। हमें विकास और स्थिरता दोनों की चुनौतियों से सतर्क रहना होगा और अर्थव्यवस्था की जरूरतों के साथ मिलकर सीमा पार लेन-देन से संबंधित नीतिगत व्यवस्था को आगे बढ़ाना होगा। जहां तक विदेशी विनिमय डीलर अथवा विशेष कर अधिकृत डीलर ग्राहकों के साथ प्राथमिक इंटरफ़ेस तैयार करते हैं तथा विदेशी मुद्रा बाज़ार में विकास को आकार देते हैं, वे इस संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहेंगे।

मुझे विश्वास है कि आपके विचार-विमर्श और चर्चाएं काफी महत्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध होंगी। मैं आपको इस प्राचीन किंतु आधुनिक शहर की सुखद सैर के लिए भी शुभकामनाएं देता हूँ।